II. अन्न की कमी और कृषि का भविष्य

5. चूंकि अब 1966 और 1967 की अन्न की भारी कमी दूर हो गयी है और खरीफ की अपेक्षाकृत अधिक फसल मंडियों में आ रही है, इसलिए यह उपयोगी होगा कि पिछले दो वर्षों के अनुभवों पर फिर से गौर किया जाय और भावी नीति निर्धारित करने के लिए उनसे निष्कर्ष निकाले जायें। इस सम्बन्ध में ऐसे उपयुक्त उपाय ढूंढने की भी आवश्यकता है जिनसे खेती की 1967-68 की अच्छी उपज विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थायी परिसम्पत्ति के रूप में बदल जाय।

क. खाद्य–समस्या

6. बहुत बड़ी मात्रा में आयात किये जाने पर भी, ऐसा लगा कि 1966 में अन्न की प्रति-व्यक्ति उपलब्धि 15 प्रतिशत घट गयी; पर इसमें उस कमी को हिसाब में नहीं लिया गया है जो गैर-सरकारी स्टाक में अवश्य हुआ होगा (देखिए चार्ट)। जब अगला वर्ष अर्थात् 1967 का वर्ष शुरू हुआ तो गैर-सरकारी क्षेत्र में पूर्ति के स्रोत सूख गये थे। दालों से भिन्न अनाजों की पैदावार पहले के वर्ष की अपेक्षा कुछ अधिक हुई, पर दालों की पैदावार कम रही। अन्न का आयात घट गया। सरकारी क्षेत्र का, खास कर केन्द्र का स्टाक समाप्त हो गया। कुल मिलाकर, 1967 में प्रति-व्यक्ति उपलब्धि पहले के वर्ष की बहुत कम उपलब्धि से थोड़ी-सी कम थी।

7. 1967 में चावल सम्बन्धी स्थिति विशेष रूप से कठिन थी। यही नहीं कि पहले के वर्ष की तुलना में देश में चावल का उत्पादन कुछ कम हुआ, बल्कि चावल के आयात में भी 40 प्रतिशत से अधिक की कमी हुई। बर्मा और थाईलैण्ड के चावल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत बहुत ज्यादा बढ़ गयी। कई अवसरों पर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में चावल उपलब्ध ही नहीं होता था। पहले के वर्ष की तुलना में देश के अन्दर चावल की वसूली में भी बहुत कमी हो गयी। इन कारणों से केन्द्र को केरल और पश्चिम बंगाल जैसे अन्न की कमी वाले राज्यों को पर्याप्त मात्रा में चावल देने में कठिनाई हुई। जब कभी चावल उपलब्ध नहीं होता था, तो चावल के बदले गेहूं या मोटे अनाज भेजे जाते थे।

8. इन कठिनाइयों के होते हुए भी, सरकारी वितरण व्यवस्था काफी कुशलता के साथ जारी रखी गयी। चूंकि सरकारी प्रारक्षित स्टाक निम्नतम स्तर पर था, इसलिये अन्न-सम्बन्धी सारी कार्रवाई अप्रत्याशित घटनाओं, जैसे स्वेज नहर के बन्द हो जाने, डगों में हड़तालों के कारण जहाजों के माल को उठाने-धरने में विलम्ब होने और इस प्रकार की दूसरी आकस्मिक बातों पर निर्भर थी। इस संदर्भ में विचार करने पर पिछले दो वर्षों के अन्न-सम्बन्धी प्रबन्ध को एक बड़ी सफलता माना जा सकता है।

ख. बिहार में संकट

9. 1966–67 में बिहार सबसे अधिक सूखा-पीड़ित क्षेत्र था। राज्य की कुल आबादी का लगभग 92 प्रतिशत भाग देहाती है, जबकि देहाती आबादी का अखिल भारतीय औसत 82 प्रतिशत है। 1963–64 में बिहार में दालों से भिन्न अनाजों की प्रतिव्यक्ति खपत अखिल भारतीय औसत से लगभग 20 प्रतिशत कम थी। 1964–65 में राज्य में अनाज की पैदावार 75 लाख मेट्रिक टन के चरम स्तर पर पहुंच गयी। इससे अगले वर्ष में पैदावार में कुछ कमी हुई, लेकिन 1966–67 में, जब राज्य की सामान्य पैदावार का 40 प्रतिशत भाग नष्ट हो गया, फसल की बरबादी ने विकट संकट का रूप धारण कर लिया। 1967 की समस्या केवल अनाज की बेहद कम पैदावार की समस्या ही नहीं थी, बल्कि पीने के पानी की अत्यधिक कमी, महामारियों के फैलने के खतरे और पशुओं के चारे की भारी कमी की भी समस्या थी।

अन्न की प्रति-व्यक्ति उपलब्धि

(ग्राम प्रतिदिन)

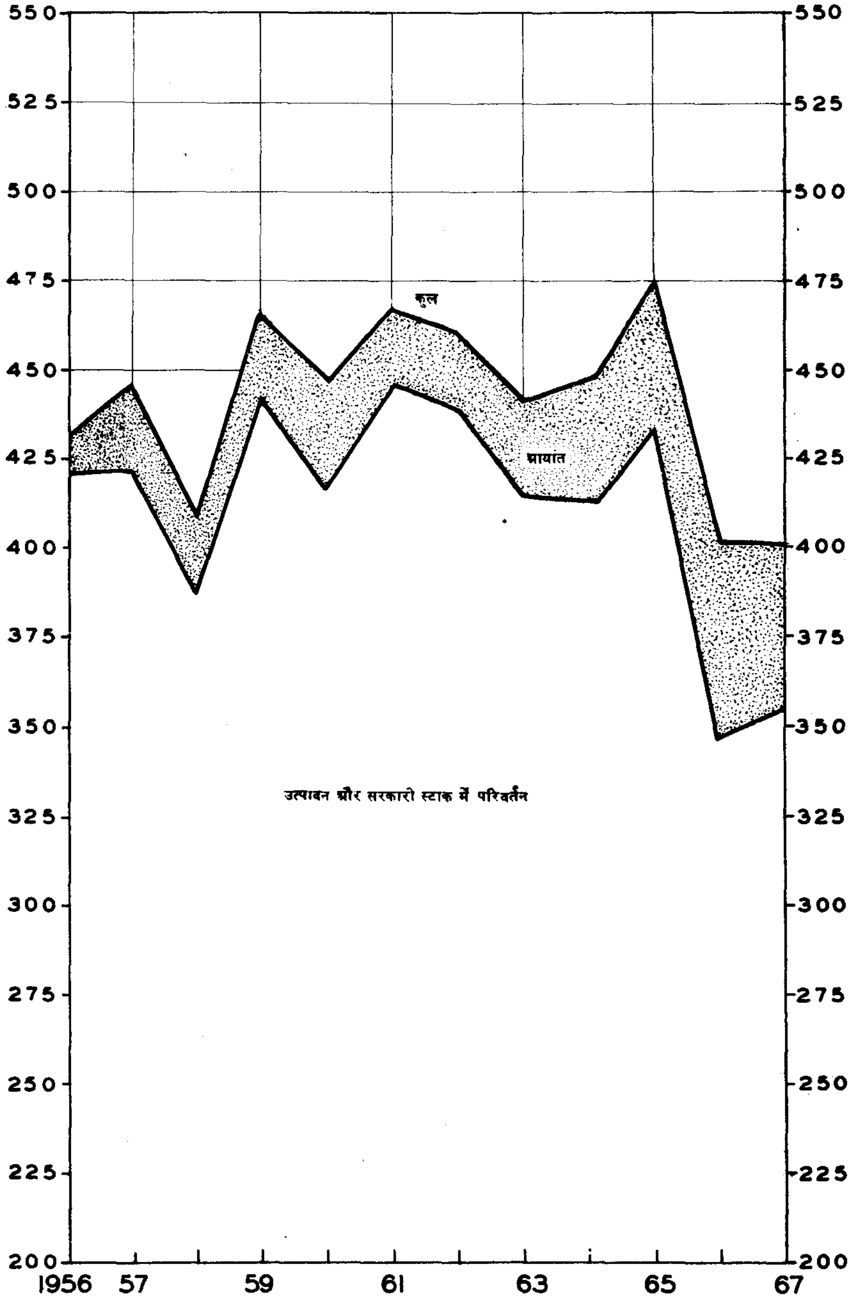

वित्त मंत्रालय, अर्थ प्रभाग

10. केन्द्रीय सरकार और कई स्वयंसेवी सहायता अभिकरणों के सहयोग से बिहार सरकार ने इस संकट का सामना करने का कार्यक्रम शुरू किया । बिहार प्रशासन के प्रयत्नों का उद्देश्य नियोजन की सुविधाएं प्रदान कर समाज के कमजोर वर्गों की रक्षा करना, उचित मूल्यों पर आधारभूत राशन की व्यवस्था करना, बूढ़ों और अपाहिजों को मुफ्त सहायता देना, संकट-काल में लोगों को खाना खिलाने का कार्यक्रम चलाना, निःशुल्क पाकशालाएं चलाना, टीके लगाना और पीने के पानी के लिए नलकूप लगाना और पशुओं को राहत पहुंचाना था ।

11. इन कार्यों की व्यापकता का अन्दाजा नीचे दिये गये कुछ आंकड़ों से लगाया जा सकता है । केन्द्रीय स्टाक से बिहार सरकार को दिये जाने वाले अन्न की मात्रा में वृद्धि हुई और 1965 में दिये गये 7 लाख मेट्रिक टन अन्न के मुकाबले 1966 में और 1967 में क्रमशः 10 लाख और 20 लाख मेट्रिक टन अनाज दिया गया । केन्द्र से बिहार सरकार को 81 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता दी गयी जिसमें 10 करोड़ रुपया अनुदानों के रूप में था । सहायता-कार्यों में, जिनमें पंच-वर्षीय आयोजना की योजनाएं भी शामिल हैं, नियोजित व्यक्तियों की संख्या जून 1967 में प्रायः 810,000 तक पहुंच गयी, जो उच्चतम स्तर था । सूखे से पीड़ित कुल लगभग 4 करोड़ 70 लाख लोगों के लिए अनौपचारिक राशन-व्यवस्था की गयी थी । निःशुल्क सहायता पाने वाले व्यक्तियों की संख्या जुलाई 1967 में अधिकतम हो गयी, अर्थात् 782,000 से भी ऊपर पहुंच गयी । संकट-काल में बच्चों और गर्भवती स्त्रियों तथा दूध पाते बच्चों की माताओं को खाना खिलाने के कार्यक्रम के अन्तर्गत मई 1967 में अधिकतम, अर्थात् 55 लाख व्यक्तियों को खाना खिलाने का प्रबन्ध किया गया ।

12. खरीफ की फसल के आने से एक क्विंटल चावल की कीमत, जो सितम्बर के अन्त में 194 रुपया थी, घटते-घटते दिसम्बर 1967 के अन्त में 140 रुपया रह गयी । यद्यपि अब स्थिति वैसी गम्भीर नहीं है, फिर भी कम उत्पादकता और कम आमदनी की समस्या बनी हुई है । अनिश्चित वर्षा पर निर्भर रहना कम करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है । पिछले दो वर्षों में सिंचाई के छोटे-छोटे निर्माण-कार्यों में काफी प्रगति हुई । बिहार में नलकूपों की संख्या, जो मार्च 1966 में 6294 थी, बढ़कर अक्टूबर 1967 में 9081 हो गयी । इसी अवधि में पम्प-सेटों की संख्या भी 18,473 से बढ़ कर 55,543 हो गयी ।

ग. फसल का भविष्य

13. मौसम-सम्बन्धी स्थिति 1967–68 में अनुकूल रही । अक्टूबर से दिसम्बर 1967 तक की अवधि में कुछ चुनी हुई मण्डियों में आये हुए चावल की मात्रा 1966 की इसी अवधि की तुलना में लगभग 30 प्रतिशत अधिक थी । चावल के थोक मूल्य का सूचक-अंक सितम्बर के अन्त से दिसम्बर 1967 के अन्त तक की अवधि में 15 प्रतिशत घट गया । रबी की बुआई अच्छी हुई है और यदि मौसम के शेष भाग में स्थिति सामान्य रही तो सम्भावना है कि रबी की फसल भी

बहुत अच्छी होगी। कुल मिला कर, 1967–68 में अन्न की पैदावार 9 करोड़ 50 लाख मेट्रिक टन होने की सम्भावना है (देखिये चार्ट)। इस आधार पर, अन्न की पैदावार 1966–67 की असाधारण रूप से कम पैदावार के मुकाबले लगभग 27 प्रतिशत अधिक होगी। यद्यपि अधिकतम पैदावार वाले वर्ष 1964–65 की तुलना में यह वार्षिक वृद्धि 2.5 प्रतिशत अधिक होगी, फिर भी 1963–64 पर केन्द्रित, तीन वर्षों के औसत के हिसाब से अनाज की पैदावार में 3.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होगी।

14. 9 करोड़ 50 लाख मेट्रिक टन के कुल उत्पादन में से पशुओं का चारा, बीज और छीजन निकालने के बाद, 1968 में आदमियों के खाने के लिए 8 करोड़ 30 लाख मेट्रिक टन अन्न या प्रति-व्यक्ति प्रतिदिन 435 ग्राम अन्न उपलब्ध होगा। चार्ट में दिखाया गया है कि यद्यपि दैनिक खपत का यह स्तर पहले के दो वर्षों के स्तर की तुलना में 8 प्रतिशत से ज्यादा अधिक होगा, फिर भी 1961 से 1963 तक के या 1963 से 1965 तक के औसत स्तर से यह स्तर कम रहेगा। दूसरे शब्दों में, अनुपूरक आयात के बिना, इस वर्ष की प्रत्याशित अपेक्षाकृत बड़ी फसल खपत सम्बन्धी आवश्यकता से कम रहेगी, चाहे इसमें से स्टाकों की पुनः पूर्ति भी न की जाय।

घ. संकट-निरोधक भण्डार

15. कृषकों, चक्कीवालों (मिलरों), व्यापारियों और उपभोक्ताओं में पिछले दो वर्षों में समाप्त हुए स्टाक को फिर से पूरा करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होगी। इसमें सन्देह नहीं कि नयी फसल के एक भाग से गैर-सरकारी क्षेत्र में स्टाकों को सामान्यतः फिर से पूरा किया जायगा, पर यह बताना कठिन है कि वह भाग कितना होगा। अन्न का इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर जमा किया जाना अर्थ-व्यवस्था में अन्न के वितरण में उपयोगी सिद्ध होता है। फिर भी, उचित स्टाक का होना एक बात है और सट्टेबाजी के लिए अन्न जमा करना और बात। इस प्रकार के भ्रष्टाचार को रोकने के लिए लगातार सतर्कता रखना जरूरी होगा।

16. भारत की अन्न-सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था में होने वाली घट-बढ़ के इतिहास से और खास कर पिछले दो वर्षों के अनुभव से सिद्ध हो गया है कि सरकार के पास पर्याप्त संकट-निरोधक भण्डार होना अत्यावश्यक और वाञ्छनीय है। तदनुसार सरकार ने संकट-निरोधक भण्डार बनाने का निश्चय किया है। यदि इस प्रकार के भण्डार का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाय, तो मूल्यों को स्थिर रखने की सम्पूर्ण नीतियों पर उसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा और तर्कसंगत अन्न-नीति को लागू करने में भी उससे सुविधा होगी। जब सरकार के पास पर्याप्त संकट-निरोधक भण्डार होगा, तो वह भ्रष्टाचार को रोकने के लिए और उपयुक्त पूर्ति का प्रबन्ध करने के लिए, जब और जहां आवश्यक होगा, अन्न के बाजार में हस्तक्षेप कर सकेगी। इसी प्रकार, एक बार जब सरकार अन्न के बाजार में अपनी स्थिति सुदृढ़ बना लेगी, तो अन्न की वसूली का काम अपेक्षाकृत आसान हो जायगा। एक बार जब [illegible]कार अन्न के बाजार में मूल्य की घट-बढ़ को नियंत्रित रखने की अपनी क्षमता का परिचय दे देगी, तो बाजार में अन्न न भेजने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होगा।

अन्न का उत्पादन

दस लाख मेट्रिक टनों में

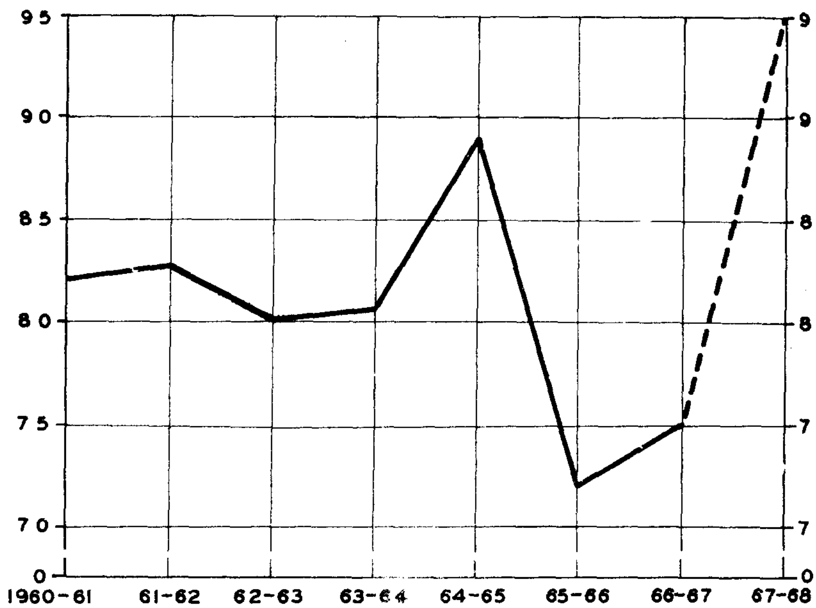

नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद का उत्पादन, आयात और कुल प्राप्ति

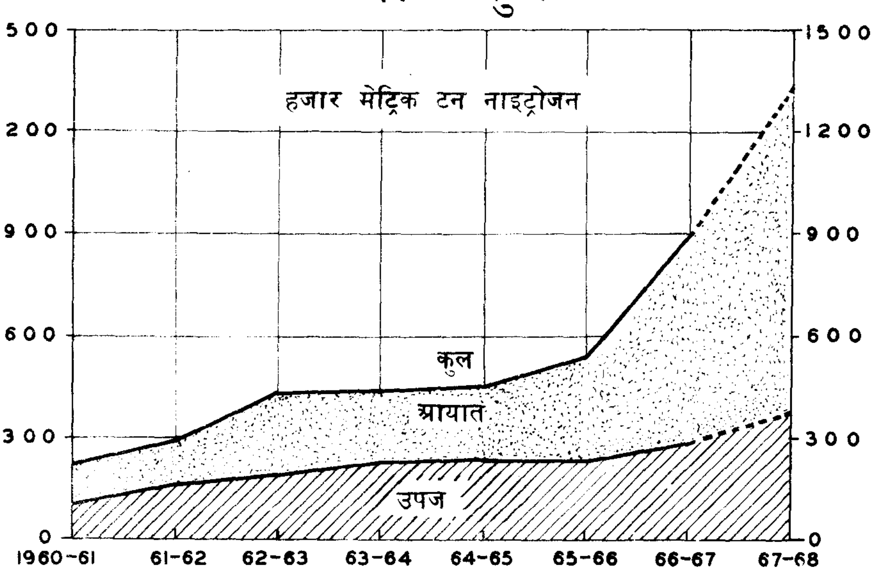

वित्त मंत्रालय, अर्थ प्रभाग

17. राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के पास वर्ष के अन्त में रहने वाले स्टाक में बड़ा अन्तर रहा है। यह स्टाक 1956 में 320,000 मेट्रिक टन से कम था और 1960 में 28 लाख मेट्रिक टन से अधिक था। 1966 के अन्त में 22 लाख मेट्रिक टन का स्टाक था जिसका 40 प्रतिशत केन्द्रीय सरकार के पास था। 1967 में केन्द्रीय स्टाक में भारी कमी हो गयी और वर्ष के अधिकतर भाग में स्टाक की स्थिति ऐसे नाजुक स्तर पर रही कि उसमें केवल एक सप्ताह के वितरण के लिए आवश्यक अन्न रहा। 1968 में यह स्टाक फिर से पूरा किया जायगा। अन्न के संकट-निरोधक सरकारी भण्डार में ज्यादा से ज्यादा कितना अनाज रखा जाना चाहिये, इसका निर्णय अटकल के आधार पर नहीं बल्कि अनुभव के आधार पर ही किया जा सकता है। अगले वर्ष के लिए केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों के भण्डारों में 30 लाख मेट्रिक टन अनाज बढ़ाने का लक्ष्य है। यह लक्ष्य चाहे कम जान पड़े, फिर भी इस बात को देखते हुए कि मूल्यों पर अन्न की अपेक्षाकृत थोड़ी कमियों का भी अनुपात से ज्यादा प्रभाव पड़ता है, अन्न-सम्बन्धी अर्थव्यवस्था पर इस लक्ष्य का काफी प्रभाव पड़ सकता है। इतना बड़ा संकट-निरोधक भण्डार बनाने के लिए पर्याप्त वित्तीय साधनों की आवश्यकता होगी।

ङ. अन्न की वसूली और आयात

18. संकट-निरोधक भण्डार (बफर-स्टाक) बनाने के निर्णय से अन्न की वसूली का जोरदार अभियान चलाने की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस अभियान का लक्ष्य 70 लाख मेट्रिक टन अन्न या अनुमानित वास्तविक पैदावार का लगभग 8.4 प्रतिशत भाग या बिक्री योग्य अंश का प्रतिशत के आधार पर लगभग तिगुना अन्न वसूल करना है। पैदावार के साथ वसूली का अनुपात 1950 से प्रारम्भ हुए दशक के पहले वर्षों में उस समय की व्यापक राशन–व्यवस्था के कारण काफी अधिक था (परिशिष्ट की सारणी 1.8 देखिये) बाद में अन्न की वसूली का काम कम हो गया, क्योंकि अन्न के वितरण पर से नियंत्रण हटा दिये गये। हाल के वर्षों में वसूली के अनुपात में बहुत वृद्धि हुई और जो लक्ष्य इस वर्ष के लिए निर्धारित किया गया है वह व्यवहार्यता की सीमा से बाहर नहीं है।

19. हाल के वर्षों में अन्न की वसूली के मूल्य बढ़ा दिये गये हैं, पर खुले बाजार के मूल्य और बढ़ गये हैं। उदाहरणार्थ, चावल की वसूली के मूल्यों का औसत स्तर, जो 1965-66 में लगभग 66 रुपया प्रति क्विण्टल था, बढ़कर, 1966-67 में लगभग 73 रुपया हो गया अर्थात् उसमें लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। फिर भी, कई राज्यों में खुले बाजार में अन्न के मूल्य अपेक्षाकृत काफी ऊंचे थे और इस विषमता से भारी कमी के वर्षों में वसूली के काम में और कठिनाइयां पैदा हुई। लेकिन चालू वर्ष में बहुत अच्छी फसल होने की आशा के कारण परिस्थिति बदल गयी है और अन्न की वसूली के मूल्यों का जो प्रयोजन हो सकता है वह भी नई परिस्थिति में बदल गया है। खुले बाजार में मूल्यों का गिरना शुरू हो गया है

और ऐसे अवसर आ सकते हैं जबकि अनाज की वसूली मूल्यों को गिरने न देने की कार्रवाई का रूप धारण कर लेगी। मूल्यों को न गिरने देने की कार्रवाई के बिना कृषकों की जो आय होती उसकी तुलना में, इस कार्रवाई से न केवल कृषकों की आय बढ़ेगी बल्कि सट्टे के लिए की जाने वाली गैर-सरकारी जमाखोरी के लिए भी प्रोत्साहन कम हो जायगा।

20. यह स्वीकार किया जाता है कि कृषकों को यह आश्वासन देना आवश्यक है कि मौसम के दौरान कृषि पदार्थों के मूल्यों को उचित स्तर पर बनाये रखा जायगा। कृषि-पदार्थों के मूल्यों का उचित स्तर क्या है, इसका निर्णय करना आसान नहीं है। 1962-63 से कृषि पदार्थों के मूल्य निर्मित वस्तुओं के मूल्यों की अपेक्षा ज्यादा तेजी से बढ़े हैं और तदनुसार कृषकों के लिए व्यापार की शर्तों में भी स्पष्ट रूप से सुधार हो गया है (देखिए परिशिष्ट की सारणी 5.4)। मूल्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में हुए इन परिवर्तनों से कृषकों को और अधिक प्रोत्साहन मिला है और कृषि में पूंजी लगाने तथा कृषि-उत्पादन करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में सहायता मिली है। बहुत सम्भव है कि 1968 में कृषकों के लिए व्यापार की शर्तें उस समय खराब हो जायं जब खुले बाजार में कृषि-पदार्थों के भाव गिर जायं और निर्मित वस्तुओं के पिछड़े हुए भाव बढ़ने लगें (विभाग IV देखिये)। परन्तु मूल्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के फिर कुछ हद तक व्यवस्थित होने की गुंजाइश है, क्योंकि कृषि-पदार्थों के पिछले दो वर्षों के मूल्य, अन्न की असाधारण कमी के द्योतक थे। खरीफ की फसल के अन्न की वसूली के भाव भी बढ़ा दिये गये, ताकि कृषकों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता रहे। चावल की वसूली का औसत मूल्य, जो 1966-67 में लगभग 73 रुपया प्रति क्विण्टल था, बढ़ा कर 1967-68 में लगभग 77 रुपया कर दिया गया अर्थात् उसमें लगभग 5 प्रतिशत की वृद्धि कर दी गयी (1966-67 में की गयी अन्न की वास्तविक वसूली की मात्रा द्वारा भारित विभिन्न राज्यों में निर्धारित अन्न की वसूली के मूल्य)।

21. खरीफ की फसल देर से हुई और वसूली का काम धीरे-धीरे शुरू हुआ। फिर भी मौसम के पहले तीन महीनों में (नवम्बर 67 से जनवरी 1968 तक) खरीफ की फसल का लगभग 14 लाख मेट्रिक टन अन्न (चावल और मोटा अनाज) वसूल किया गया, जबकि पिछले मौसम के इन्हीं महीनों में 7 लाख मेट्रिक टन अन्न वसूल किया गया था। अधिक अन्न की वसूली, आयातित माल पर सरकारी वितरण-व्यवस्था का निर्भर रहना कम करने में सहायक होगी। हाल के वर्षों में सरकारी माध्यमों से जितने अन्न का वितरण हुआ है उसमें से 70 प्रतिशत वह था जो विदेशों से मंगाया गया था।

22. आयातित अनाज पर निर्भर रहने को धीरे-धीरे समाप्त करना अन्न सम्बन्धी नीति का प्रमुख लक्ष्य है। हाल के वर्षों में फसलों के लगातार खराब होने के कारण आयात का स्तर ऊंचा रहा। 1967 में 87.2 लाख मेट्रिक टन अनाज बाहर से मंगाया गया जब कि 1966 में 103.4 लाख मेट्रिक टन अनाज मंगाया गया था। यद्यपि आयात के अधिक भाग

की वित्त-व्यवस्था विदेशी सहायता से की गयी, फिर भी, अन्न और भाड़े के लिए की गयी मुक्त विदेशी मुद्रा की अदायगियों ने अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ डाला (देखिए विभाग V)। अच्छी फसल की आशा होने पर भी, 1968 में भी आयात का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा ही रखना पड़ेगा। गैर-सरकारी स्टाक की पुनःपूर्ति संकट-निरोधक सरकारी भण्डार के निर्माण और प्रति-व्यक्ति खपत के सीमित अनुमान का विचार करके आयात की आवश्यकता लगभग 75 लाख मेट्रिक टन आंकी गयी है। इस संबंध में, 35 लाख मेट्रिक टन अन्न के आयात के लिए पी० एल० 480 के अन्तर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार के साथ पहले ही एक करार किया जा चुका है।

23. जहां तक अन्न-नीति का सम्बन्ध है, 1968 का वर्ष कई प्रकार से संक्रमण का वर्ष कहा जा सकता है। यदि 1968-69 का कृषि-सम्बन्धी मौसम सामान्य सिद्ध हो, तो भारत एक बड़ी कठिनाई को पार कर लेगा। इस दृष्टि से अन्न-सम्बन्धी अर्थ-व्यवस्था को तर्कसंगत बनाना और आयात पर निर्भर रहने को कम करना सम्भव होना चाहिए।

च. कृषि-विषयक नीति

24. अन्न की पैदावार में 1967-68 में जो बहुत वृद्धि होने का अनुमान है उसका मुख्य कारण पहले के दो वर्षों की तुलना में मौसम का अनुकूल होना है। लेकिन इस वृद्धि के बहुत कुछ अंश का श्रेय, नीति-सम्बन्धी उन उपायों को दिया जा सकता है जो भारतीय कृषि की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाने के लिए किये गये हैं।

25. कृषि और सम्बद्ध क्षेत्रों में किये जाने वाले आयोजना-सम्बन्धी खर्च का अनुपात कृषि को दी जाने वाली प्राथमिकता का पर्याप्त मापदण्ड नहीं है, क्योंकि कृषि सम्बन्धी अधिकतर निवेश गैर-सरकारी क्षेत्र में किया जाता है और कृषि की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए किये जाने वाले प्रयत्न के बहुत कुछ अंश के परिणामस्वरूप दूसरे क्षेत्रों में किया जाने वाला पूंजी-निवेश बढ़ जाता है। फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि यह अनुपात हाल के वर्षों में बढ़ गया है। यह व्यय, तीसरी आयोजना के कुल परिव्यय का 20 प्रतिशत रहा, पर 1966–67 में इस व्यय का अनुपात 22 प्रतिशत हुआ और 1967-68 के बजट में इस अनुपात का अनुमान 23 प्रतिशत से अधिक था (देखिए परिशिष्ट की सारणी 2.4)। कृषि-विकास का वित्त प्रबन्ध करने में केन्द्रीय सरकार का अधिक हाथ रहा है। 1967-68 की आयोजना के वित्त प्रबन्ध के लिए राज्य सरकारों को दी जाने वाली कुल केन्द्रीय सहायता का आधे से अधिक भाग कृषि-क्षेत्र के लिए रखा गया था। इसके अतिरिक्त आयोजना से बाहर रासायनिक खाद के लिए राज्य सरकारों को 105 करोड़ रुपये तक के ऋण देने का भी विचार था।

26. **विभिन्न प्रकार की रासायनिक खादों का उपयोग 1964-65 से 200 प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गया है** (सारणी 2), **पिछले 6 वर्षों में देश में नाइट्रोजन-पूरक, फास्फोरस-पूरक रासायनिक खादों**

का उत्पादन लगभग तिगुना हो गया है । क्षमता को बढ़ाने की कई प्रायोजनाओं का निर्माण-कार्य किया जा रहा है और दूसरी प्रायोजनाओं के आयोजन का कार्य बहुत आगे बढ़ चुका है । यह बात लगभग निश्चित है कि नाइट्रोजन-पूरक रासायनिक खाद तैयार करने की स्थापित क्षमता 1971-72 तक 27·6 लाख मेट्रिक टन तक पहुंच जायगी जबकि अप्रैल 1967 में वह 586 हजार मेट्रिक टन थी । जिन प्रस्तावों पर इस समय विचार किया जा रहा है उनसे सम्बन्धित आशावादी अनुमानों के अनुसार स्थापित क्षमता 1971-72 तक 34·6 लाख मेट्रिक टन तक पहुंच सकती है । इस बीच स्थानीय उत्पादन की अनुपूर्ति विदेशों से की जाने वाली खरीद से की जायगी । आयातित रासायनिक खाद का मूल्य जो 1960-61 में 250 लाख डालर था बढ़ कर 1966-67 में 1000 लाख डालर हो गया और 1967-68 में इसकी 2650 लाख डालर तक पहुंच जाने की सम्भावना है (विभागीय अनुमान) ।

27. अधिक उपज वाले बीजों के इस्तेमाल का कार्यक्रम 1966-67 में प्रारम्भ किया गया था । 62 लाख एकड़ भूमि में इस प्रकार के बीज बोने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था, लेकिन उत्तरी भारत के बड़े-बड़े भागों में व्यापक सूखा पड़ने से और संकर किस्म के कुछ प्रकार के बीजों की कमी हो जाने से कठिनाइयां पैदा हो गयीं । इसका परिणाम यह हुआ कि वास्तविक सफलता लक्ष्य के लगभग 80 प्रतिशत के बराबर मिली । यद्यपि नयी किस्मों के इन बीजों की उपज के बारे में व्यवस्थित आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं फिर भी कुछ राज्यों से उत्साहवर्धक समाचार प्राप्त हुए हैं । केरल में ताईचान-3 किस्म के धान की उपज सारे राज्य की औसत उपज से 110 प्रतिशत अधिक थी । (औसत राज्यवार उपज 1962-63 से 1966-67 तक की दी गयी है) । इसी प्रकार मद्रास में ए० डी० टी--27 किस्म के धान की उपज औसत राज्यवार उपज से 186 प्रतिशत अधिक थी । विदेशी किस्मों के गेहूं की उपज तो और भी अधिक हुई है । राजस्थान में मेक्सिकन किस्म के बीज से जो उपज हुई वह राज्य के औसत से 275 प्रतिशत अधिक थी । उत्तर प्रदेश में के-68 किस्म के बीज से जो उपज हुई वह राज्य की औसत उपज से 210 प्रतिशत अधिक थी । ये आंकड़े तो केवल उदाहरणस्वरूप हैं, क्योंकि अधिक उपज वाले बीजों से जो पैदावार हुई है वह केवल बीजों के गुणों का परिणाम नहीं, बल्कि कृषि के काम आने वाली उन सभी बढ़िया साधनों जैसे निश्चित जलपूर्ति, रासायनिक खाद के अधिक उपयोग और पौधा-संरक्षक वस्तुओं का परिणाम है ।

28. अधिक उपज वाले बीज बोने के कार्यक्रम के अन्तर्गत 1967 में खरीफ के मौसम में लगभग 60 लाख एकड़ भूमि लायी गयी और 1967-68 के सारे वर्ष के लिए 150 लाख एकड़ का लक्ष्य रखा गया है । पहले के वर्ष में हुए अनुभव से लाभ उठा कर कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के तरीकों में सुधार किया गया । आवश्यक किस्म के बीज आवश्यक परिमाण में समय पर उपलब्ध हो जायं इसके लिए विशेष उपाय किये गये हैं । आधारभूत बीजों का प्रचार (प्रापेगेशन) और उनकी परिमाणवृद्धि (मल्टिप्लिकेशन) बड़े-बड़े केन्द्रीय बीज फारमों पर करने का विचार है ।

सारणी—2

कृषि-सुधार के पहलू

मद	एकक	1964-65	1966-67	1967-68 (लक्ष्य)	1964-65 से 1967-68 तक प्रतिशत परिवर्तन
उपलब्ध रासायनिक खाद					
नाइट्रोजन-पूरक . . .	(000 मेट्रिक टन)	451	895	1350	200
फास्फोरस-पूरक . . .	(000 मेट्रिक टन)	160	294	550	244
पोटाश-पूरक . . .	(000 मेट्रिक टन)	57	120	296	420
(वह रकबा जिसमें सुधरी हुई किस्म के बीज बोये गये)					
अधिक उपज वाले बीज . .	(दस लाख एकड़)	0.0	4.8	15.0	—
सुधरी हुई किस्म के अन्य प्रकार के बीज	(दस लाख एकड़)	99.3	108.4	118.3	19
सींचा गया कुल क्षेत्र . .	(दस लाख एकड़)	77.0	81.6	87.1	13
पौधा संरक्षण के अन्तर्गत लाया गया क्षेत्र	(दस लाख एकड़)	38.0	59.0	126.0	232

29. नयी किस्मों के बीजों से सम्बन्धित प्रौद्योगिकी अनिश्चितता से मुक्त नहीं है। अधिक उपज वाली अधिकतर किस्में विदेशों में पैदा हुई हैं और अब तक जो अनुभव प्राप्त हुआ है वह इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वे स्थानीय जलवायु और मिट्टी के लिए कहां तक उपयुक्त होंगी। हो सकता है कि विदेशी किस्मों के बीज स्थानीय बीमारियों और हानिकर जीवों से विशेष रूप से ग्रस्त हो जायं। कुछ किस्मों के नये प्रतिरोधक प्रभेद (स्ट्रेन) तैयार करना आवश्यक होगा। प्रयोग और गवेषणा की प्रक्रिया कृषि-विषयक नयी नीति का अनिवार्य अंग है और यह प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए। भारतीय कृषि को प्रौद्योगिकी के एक स्तर से दूसरे अच्छे स्तर पर ले जाना आसान नहीं है। इसके अन्तर्गत आवश्यक विस्तार-प्रयत्न, कृषि के काम आने वाली वस्तुओं की पूर्ति और ऋण सुविधाओं के पुनर्गठन के रूप में व्यापक कार्य शामिल हैं।